

डॉ. (एमआरएस.) चंचल गोयल

बनाम

राजस्थान राज्य

फरवरी 18,2003

[शिवराज वी पाटिल और अरिजीत पासात जे जे]

सेवा कानून:

राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959: धारा 308/राजस्थान नगरपालिका सेवा नियम, 1963 नियम 26 और 27:

लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित नियमित पदाधिकारी के शामिल होने तक महिला चिकित्सक की अस्थायी नियुक्ति काफी लंबे समय तक सेवा अवधि का विस्तार उसके बाद समाप्ति-उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई-एकल न्यायाधीश ने समाप्ति को अवैध ठहराया और नियमितीकरण का निर्देश दिया-हालांकि, खंड पीठ ने सेवा की समाप्ति को उचित ठहराया- अपील पर

अभिनिर्धारित : तब से सेवा आयोग की सेवाओं के विस्तार में सहमति प्राप्त नहीं की गई थी | समय समय पर सहमति के बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता है इसलिए नियुक्ति की मुद्रा खो जाती है- सेवा आयोग द्वारा चुने गए उम्मीदवार का शामिल न होना पदधारी को कोई अधिकार प्रदान नहीं करता है, क्योंकि किसी अन्य चयनित उम्मीदवार को तैनात किया जा सकता है।

प्रशासनिक कानून:

वैध अपेक्षा का सिद्धांत - विवेचन किया गया

अपीलार्थी को नगर परिषद, गंगानगर, राजस्थान में महिला चिकित्सक के रूप में नियुक्त किया गया था. शुरू में छह महीने की अवधि के लिए या तब तक जब तक कि लोक सेवा आयोग द्वारा चयनित नियमित पदाधिकारी शामिल हुए। हालांकि, उन्हें लगभग चौदह वर्षों तक सेवा में रखा गया जब सेवा आयोग द्वारा चुने गए उम्मीदवार के रूप में उनकी सेवाओं को समाप्त कर दिया गया। इयूटी में मिल होने के लिए उपलब्ध था | रिट याचिका में, उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने सभी लाभों के साथ पदधारी की सेवाओं को नियमित करने का निर्देश दिया। हालांकि, उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने राज्य की अपील को स्वीकार कर लिया और समाप्ति आदेश को बरकरार रखा। इसलिए वर्तमान अपील पेश की गयी |

अपीलार्थी के लिए यह तर्क दिया गया था कि अपीलार्थी द्वारा दी गई सेवा की लंबी अवधि को देखते हुए, यह स्थायी हो गया था, कि वैध अपेक्षा के सिद्धांत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूरी तरह से लागू होते हैं और चूंकि अपीलार्थी को ग्रेच्युटी और पेंशन निधि लाभ योजना में भाग लेने की अनुमति दी गई थी, इसलिए फिर से मुकदमा चलाया जाता है। लाभ से इनकार नहीं किया जा सकता है। यह प्रत्यर्थी के लिए प्रस्तुत किया गया था कि चूंकि अपीलार्थी का नियुक्ति अस्थायी आधार पर और सशर्त थी, वह सेवा में बने रहने की आकस्मिक परिस्थितियों का लाभ नहीं उठा सकती हैं

याचिका खारिज करते हुए कोर्ट ने कहा,

1.1 अपील अभिनिर्धारित नियमितीकरण की कोई गुंजाइश नहीं है जब तक कि नियुक्ति नियमित आधार पर की गयी हो, यह दलील कि अस्थायी नियुक्ति के लिए भी चयन किया गया था, यह दलील कि सेवा आयोग की सहमति का अनुमान लगाया जा सकता है।

सटीक नहीं है यह निवधार है। नियम 27 के उप-नियम (2) के संदर्भ में ऐसी सहमति के बारे में अनुमान लगाने की कोई गुंजाइश नहीं है।। 118- एफ, जी)

पी एंड टी विभाग के तहत कार्यरत दिल्ली रेटेड आकस्मिक श्रम, भारतीय डाक तार मजदूर मंच बनाम। भारत संघ और ओआरएस।, [1988] 1 एस. सी. सी. 122; नरेंद्र चड्ढा और अन्य। वी. भारत संघ और ओआरएस। [1986] 2 एस. सी. सी. 157; हरियाणा और अत्र राज्य । वी. राम दिया, [1990] 2 एस. सी. आर. 431 और उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। वी. डॉ. दीप नारायण त्रिपाठी और अन्य। [1996] 1 एससीसी 454. विशिष्ट ।

1.2. A. सेवा आयोग द्वारा चयनित अपीलार्थी को प्रतिस्थापित करना था । यदि चयनित उम्मीदवार शामिल नहीं हुआ, तो यह वास्तव में अपीलार्थी के लिए कोई सहायता नहीं है। जाहिर है कि एक और चयनित व्यक्ति हो सकता है चयनित उम्मीदवार के शामिल न होने से अपीलार्थी को कोई अधिकार नहीं मिलता है। जैसा कि प्रारंभिक आदेश से पता चलता है कि सेवा आयोग द्वारा चुने गए उम्मीदवार की उपलब्धता की आवश्यकता है, न कि चयनित उम्मीदवार के शामिल होने की। [119-सी, डी]

जे एंड के लोक सेवा आयोग और अन्य। वी. डॉ. नरिंदर मोहन और ओआरएस।, [1994] 2 एस. सी. सी. 630 और भारत संघ और अन्य । वी. हरीश बालकृष्ण महायान, [1997] 3 एस. सी. सी. 194, पर भरोसा किया।

1.3. 'वैध अपेक्षा' के सिद्धांत के अनुसार, यदि किसी व्यक्ति की वैध अपेक्षा को विफल करने के लिए प्रस्तावित प्राधिकरण को उसे मामले में प्रतिनिधित्व करने का अवसर देना चाहिए। "वैध अपेक्षा" का सिद्धांत कानून के शासन की जड़ में है और इसके लिए सरकारों के व्यवहार में जनता के साथ नियमितता, पूर्वानुमेयता और

निश्चितता की आवश्यकता होती है। एक या दूसरे प्रकार के अनुकूल निर्णय की अपेक्षा को कई मामलों में अंग्रेजी कानून के हिस्से के रूप में स्वीकार किया गया है। अंग्रेजी कानून के तहत यह माना गया है कि निर्णय लेने वाले को नीति में बदलाव करने की स्वतंत्रता है।

सार्वजनिक हित को सत्र वैध अपेक्षा के सिद्धांत के अनुप्रयोग से बाधित नहीं किया जा सकता है। [... 124-डी 121-डी; 122-एच; 123-बी, सी]

[भारत संघ और ओआरएस वी. हरीश बालकृष्ण महायान, [1997]13 एससीसी 194 और सिविल सेवा संघों की परिषद और अन्य वी. नागरिक मंत्री सेवा (1985) ए. सी. 374, संदर्भित ।

आई. एन. एस. डब्ल्यू. बनाम के लिए महान्यायवादी क्विन (1990) 93 ऑल ई. आर. 1: कैन्नन वी. समुद्री मंत्री, (1991)1 टी. आर. 82; आर वी टीआरसी पूर्व पी। प्रेस्टन, (1985)

एसी 835 और ह्यूजेस बनाम स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा विभाग, एच. एल. (1985) ए. सी. 776 (788), संदर्भित।

डी स्मिथ का प्रशासनिक कानून (5 वां संस्करण। पैरा 8.038) और ऑक्सफोर्ड जर्नल ऑफ लीगल स्टडीज, पी. 23, (Vol.17) 1997, का उल्लेख किया गया है।

1.4. धनगत मामले में, वैध अपेक्षा का सिद्धांत लागू किया गया है। यह नहीं दिखाया गया है कि अधिकारियों द्वारा कोई ऐसा कार्य कैसे किया गया जिससे यह धारणा बनी कि मूल नियुक्ति आदेश में संलग्न शर्तों को माफ कर दिया गया था। इस तरह के निराधार प्रभावों पर कोई वैध अपेक्षा नहीं की जा सकती है। यह भी संकेत नहीं दिया गया था कि किसने, यदि कोई हो और किस अधिकार के साथ ऐसी धारणा बनाई। कोई भी छूट जो अपेक्षित अनुपालन के खिलाफ हो, स्वीकार नहीं की जा सकती

है। क्या एक अपेक्षा का अस्तित्व, स्वयं स्पष्ट रूप से, तथ्य का प्रश्न है। हालाँकि, स्पष्ट वैधानिक शब्द किसी भी अपेक्षा पर हावी हो जाते हैं। अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि खंड पीठ को निर्णय टेरा फर्मा पर है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। [128- बी-ई]

भारतीय खाद्य निगम बनाम। एम/एस। कामधेनू पशु चारा उद्योग, [1993] 1 एस. सी. सी. 71 और भारत संघ और अन्य वी. हिंदुस्तान विकास निगम और अन्य। [1993] 3 एस. सी. सी. 499, पर भरोसा किया। नवज्योति को-ऑप। ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी बनाम भारत संघ, [1992] 4 एससीसी 477) ; भारत संघ और ओआरएस वी. हिंदुस्तान विकास निगम और अन्य।, [1993] 3 एस. सी. सी. 499; मद्रास सिटी वाइन मर्चेन्ट्स एसोसिएशन बनाम। राज्य डॉ।

निर्णय: न्यायाधिपति अरिजीत पसायत

इस अपील में एकमात्र बिंदु यह है कि क्या अपीलकर्ता की सेवा से बर्खास्तगी उचित है। तथ्यात्मक परिदृश्य जो लगभग निर्विवाद है वह इस प्रकार है:-

अपीलकर्ता को स्थानीय स्वशासन विभाग, राजस्थान सरकार द्वारा नियुक्ति आदेश दिनांक 27.11.1974 द्वारा नियुक्त किया गया था, और नगर परिषद, गंगानगर के तहत लेडी डॉक्टर के रूप में तैनात किया गया था। नियुक्ति आदेश में यह शर्त थी कि उन्हें छह महीने की अवधि के लिए या राजस्थान लोक सेवा आयोग (इसके बाद 'सेवा आयोग' के रूप में संदर्भित) द्वारा चयनित उम्मीदवार उपलब्ध होने तक, जो भी पहले हो, पूरी तरह से अस्थायी आधार पर तैनात किया जा रहा था। अपीलार्थी की कार्य अवधि लगातार बढ़ाई जाती रही। यह नियुक्ति राजस्थान नगर पालिका अधिनियम, 1959 (संक्षेप में अधिनियम') की धारा 308 के साथ पठित राजस्थान नगर पालिका सेवा नियम, 1963 (संक्षेप में 'नियम') के नियम 26 और 27 के तहत प्रदत्त शक्तियों

का प्रयोग करते हुए की गई थी। हालाँकि अपीलकर्ता का चयन अक्टूबर 1976 और अगस्त 1982 में सेवा आयोग द्वारा किया गया था, लेकिन वह इस चयन के बाद शामिल नहीं हुई और सरकार के स्थानीय स्वशासन विभाग द्वारा जारी विस्तार के आदेशों के आधार पर जारी रही। 1.10.1988 को अपीलकर्ता की सेवाएँ इस आधार पर समाप्त कर दी गईं कि सेवा आयोग द्वारा चयनित उम्मीदवार उपलब्ध था। इस तरह की बर्खास्तगी को चुनौती देते हुए, अपीलकर्ता ने एक रिट याचिका दायर की, जिसका 1988 का 3739 नंबर है। राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष उच्च न्यायालय द्वारा 12.10.1988 को स्थगन का अंतरिम आदेश इस निर्देश के साथ पारित किया गया था कि यदि अपीलकर्ता को पहले ही कार्यमुक्त नहीं किया गया है तो उसे उसके पद से मुक्त नहीं किया जाएगा। इसके बाद दिनांक 21.3.1989 के आदेश द्वारा अंतरिम आदेश को पूर्ण बना दिया गया। दिनांक 5.3.1993 के फैसले में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने माना कि अपीलकर्ता की सेवाओं की समाप्ति अवैध थी क्योंकि आदेश इस तथ्य की अनदेखी करते हुए पारित किया गया था कि उसने 14 साल की सेवा पूरी कर ली थी। अधिकारियों को एक महीने की अवधि के भीतर उसकी उपयुक्तता का फैसला करने और सेवा के मूल रूप से नियुक्त सदस्य को उपलब्ध सभी लाभों के साथ उसकी सेवाओं को नियमित करने का निर्देश दिया गया था। राजस्थान राज्य ने राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष अपील दायर की। अंतरिम आदेशों के अनुसार अपीलकर्ता को सेवा में बने रहने की अनुमति दी गई। लेकिन दिनांक 11.4.1997 के आक्षेपित निर्णय द्वारा, डिवीजन बेंच द्वारा यह माना गया कि अपीलकर्ता नियम 27 के तहत की गई नियुक्ति के आधार पर केवल एक अस्थायी कर्मचारी के रूप में बनी रही क्योंकि उसे नियमों के अनुसार सेवा आयोग द्वारा चयनित नहीं किया गया था। उन्हें पद पर रहने का कोई अधिकार नहीं था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस अपील में निर्णय को चुनौती दी गई है।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अब तक उसने 28 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है; समाप्ति का आदेश पारित होने तक 14 वर्ष हैं और उच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा दिए गए अंतरिम निर्देशों के आधार पर 14 वर्ष। हालाँकि उनकी नियुक्ति शुरू में सशर्त थी, लेकिन उनके द्वारा प्रदान की गई सेवा की लंबी अवधि को देखते हुए, इसे स्थायित्व मिल गया था और एकल न्यायाधीश ने पर्याप्त आधार पर नियुक्ति को नियमित करने का निर्देश देना उचित ठहराया था। डिवीजन बेंच ने मुख्य विशेषताओं को नजरअंदाज कर दिया और माना कि मूल रूप से की गई अस्थायी नियुक्ति बरकरार रहेगी। निदेशक, प्रबंधन विकास संस्थान, यूपी बनाम पुष्पा श्रीवास्तव (श्रीमती) (1992 [4] एससीसी 33), अश्वनी कुमार और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य। (जेटी 1997 [1] एससी 243), भारतीय डाक तार मजदूर मंच बनाम भारत संघ और अन्य के माध्यम से पी एंड टी विभाग के तहत नियोजित दैनिक रेटेड आकस्मिक श्रमिक। (1988 [1] एससीसी 122), नरेंद्र चड्ढा और अन्य। बनाम भारत संघ और अन्य । (1986 [2] एससीसी 157), हरियाणा राज्य और अन्य। बनाम राम दीया (1990 [2] एससीआर 431), उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। बनाम डॉ. दीप नारायण त्रिपाठी और अन्य । (1996 [8] एससीसी 454) याचिका को प्रमाणित करने के लिए निम्न न्याय निर्णयों पर निर्भर किया गया। यह तर्क दिया गया कि इन सभी मामलों में इस न्यायालय ने प्रदान की गई सेवा की लंबी अवधि और संबंधित कर्मचारी को मिलने वाले परिणामों और लाभों पर ध्यान दिया, जिन्होंने बिना किसी दोष के ऐसी सेवा प्रदान की थी। यह भी प्रस्तुत किया गया कि वैध अपेक्षा के सिद्धांत पूरी तरह से लागू होते हैं।

शेष रूप से यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ता को राजस्थान नगरपालिका सेवा (पेंशन) नियम, 1989 (संक्षेप में 'पेंशन नियम') के तहत उपलब्ध ग्रेच्युटी और पेंशन फंड लाभ योजनाओं के तहत विशेषाधिकार दिए गए हैं। उन्होंने लगभग दो साल

पहले स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन किया है और कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया गया है। उसे इन लाभों से वंचित नहीं किया जा सकता।

दूसरी ओर, प्रतिवादी के वकील ने कहा कि नियुक्ति स्पष्ट रूप से अस्थायी आधार पर थी, इस स्पष्ट शर्त के साथ कि यदि सेवा आयोग द्वारा चयनित उम्मीदवार उपलब्ध था, तो संकेतित अवधि की समाप्ति से पहले भी सेवा समाप्त कर दी जाएगी। अपीलकर्ता उस आकस्मिक परिस्थिति का फायदा नहीं उठा सकती जो वह 14 साल तक जारी रही। दो बार सेवा आयोग द्वारा एक बार 1976 में और फिर 1982 में चुने जाने के बाद भी वह उन कारणों से शामिल नहीं हुई, जो उन्हें सबसे अच्छी तरह मालूम हैं; एक बार 1976 में और फिर 1982 में सेवा आयोग द्वारा। केवल इसलिए कि वह लंबे समय से जारी है, वह किसी भी प्रवर्तनीय अधिकार में तब्दील नहीं हुआ है। वह पद पर ग्रहणाधिकार का दावा नहीं कर सकती।

इससे पहले कि हम कानूनी मुद्दों पर चर्चा करें, उन नियमों पर ध्यान देना आवश्यक है जो निर्विवाद रूप से लागू होते हैं। नियमों का भाग VI नियुक्ति, परीक्षा और स्थायीकरण से संबंधित है। नियुक्ति की शक्ति नियम में दर्शायी गयी है

26. नियम 27 अस्थायी या स्थानापन्न नियुक्तियों से संबंधित है, जो हैं:-

"अस्थायी या स्थानापन्न नियुक्तियाँ (1) [सेवा में एक रिक्ति अस्थायी रूप से भरी जा सकती है] नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा एक स्थानापन्न क्षमता में एक अधिकारी को नियुक्त करके जिसका नाम नियम 21 के तहत तैयार सूची में या नियम 25 के तहत सूचियों में शामिल है: बशर्ते कि पहली सूची तैयार होने तक या सूची समाप्त होने की स्थिति में, रिक्त पद को नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा उस पद पर नियुक्ति के लिए पात्र व्यक्ति को पदोन्नति द्वारा नियुक्त करके

या अस्थायी रूप से पात्र व्यक्ति को नियुक्त करके भरा जा सकता है।
इन नियमों के प्रावधानों के तहत सेवा में सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति
के लिए;”

[परंतु यह भी कि यदि इन नियमों के तहत जिस ग्रेड या श्रेणी से पदोन्नति
द्वारा नियुक्ति की जा सकती है, उसके सभी अधिकारियों को पहले ही पदोन्नत किया
जा चुका है और उस ग्रेड या श्रेणी से कोई अधिकारी उपलब्ध नहीं है, तो नियुक्ति
प्राधिकारी ऐसी रिक्ति को पदोन्नति द्वारा भर सकता है। ऐसे ग्रेड के नीचे का ग्रेड या
श्रेणी।]

(2) उप-नियम (1) के तहत की गई कोई भी नियुक्ति आयोग को उनकी
सहमति के लिए संदर्भित किए बिना [एक वर्ष] की अवधि से अधिक जारी नहीं रखी
जाएगी और उनके इनकार पर तुरंत समाप्त कर दी जाएगी।

नियम 29 और 31 क्रमशः परिवीक्षा और पुष्टिकरण से संबंधित हैं। जैसा कि
नियुक्ति के प्रारंभिक आदेश दिनांक 27.11.1974 से पता चलता है कि अपीलकर्ता को
नियम 26 और 27 के अनुसार नियुक्त किया गया था। यह स्पष्ट रूप से इंगित किया
गया था कि नियुक्ति अस्थायी आधार पर की गई थी, इस शर्त के साथ कि यदि सेवा
आयोग द्वारा चयनित उम्मीदवार उपलब्ध है, रोजगार स्वतः ही समाप्त हो जाना था।
नियम 27 का उपनियम (2) काफी महत्वपूर्ण है। इसमें विशेष रूप से कहा गया है कि
उप-नियम (1) के तहत की गई कोई भी नियुक्ति उनकी सहमति के लिए आयोग को
संदर्भित किए बिना एक वर्ष की अवधि से अधिक जारी नहीं रखी जाएगी और उनकी
सहमति से इनकार करने पर तुरंत समाप्त कर दी जाएगी। विद्वान एकल न्यायाधीश
इस तथ्य से प्रभावित थे कि लंबी अवधि तक आयोग से सहमति नहीं मांगी गई थी
और उन्होंने माना कि निष्क्रियता ने अपीलकर्ता को एक अपराजेय अधिकार दिया।

डिवीजन बेंच द्वारा इस दृष्टिकोण को सही ढंग से खारिज कर दिया गया था। नियम 27 के उप-नियम (2) में रोजगार की प्रकृति और प्राधिकारी जिसकी सहमति से निरंतरता बनाई जा सकती है, स्पष्ट रूप से वर्णित है। एक वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद यह मानने की कोई गुंजाइश नहीं है कि स्वतः विस्तार होता है। मामले में आयोग को संदर्भ नहीं दिया गया था। नगर परिषद में लेडी डॉक्टर के पद पर नियुक्ति सेवा आयोग के माध्यम से चयन द्वारा की जानी है। यह निर्विवाद रूप से नहीं किया गया है।

जब तक नियुक्ति नियमित आधार पर न हो, नियमितीकरण की कोई गुंजाइश नहीं है। अपीलकर्ता द्वारा इस स्थिति पर काफी जोर दिया गया है कि अस्थायी नियुक्ति के लिए भी चयन होता था। वास्तव में इसका कोई परिणाम नहीं है। अपीलकर्ता की एक और दलील पर ध्यान देने की जरूरत है। दिए गए विस्तार के संदर्भ में यह तर्क दिया गया कि समय-समय पर विस्तार दिए जाने पर सेवा आयोग की सहमति का अनुमान लगाया जा सकता है। यह दलील बिना किसी तथ्य के है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, नियम 27 के उप-नियम (2) के संदर्भ में ऐसी सहमति के बारे में कोई अनुमान लगाने की कोई गुंजाइश नहीं है। एक वर्ष के बाद, नियुक्ति की कीमत खत्म हो जाती है। विस्तार आदेश केवल प्रभावशीलता की अवधि के दौरान ही संचालित होते हैं।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा जिन निर्णयों को आधार बनाया गया है, वे अलग-अलग तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में दिए गए थे। एक निर्णय इस बात के लिए प्राधिकारी है कि वह क्या निर्णय लेता है, न कि इस बात के लिए कि निर्णय के निष्कर्ष से क्या अनुमान लगाया जा सकता है।

जब तक प्रारंभिक भर्ती को एक निर्धारित एजेंसी के माध्यम से नियमित नहीं किया जाता, तब तक नियमितीकरण की मांग की कोई गुंजाइश नहीं है। यह सच है कि एक तदर्थ नियुक्त व्यक्ति को दूसरे तदर्थ नियुक्त व्यक्ति द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है; केवल कानूनी रूप से चयनित उम्मीदवार ही तदर्थ या अस्थायी नियुक्त व्यक्ति का स्थान ले सकता है। इस मामले में नियुक्ति के प्रारंभिक आदेश में यह स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था कि सेवा आयोग द्वारा चयनित उम्मीदवार उपलब्ध होने पर अपीलकर्ता को जगह देनी होगी।

वास्तव में, सेवा आयोग द्वारा चयनित एक उम्मीदवार को अपीलकर्ता का स्थान लेना था, भले ही अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने यह तर्क स्वीकार कर लिया हो कि चयनित उम्मीदवार शामिल नहीं हुआ था। इससे वास्तव में अपीलकर्ता को कोई सहायता नहीं मिलती है। तथ्य यह है कि एक व्यक्ति का चयन किया गया है और सेवा आयोग ने चयनित उम्मीदवारों की एक सूची तैयार की है। यदि वह व्यक्ति, जिसे अपीलकर्ता का स्थान लेना था, किसी कारण से शामिल नहीं हुआ, तो जाहिर तौर पर किसी अन्य चयनित व्यक्ति को तैनात किया जा सकता है। चयनित उम्मीदवार के शामिल न होने से अपीलकर्ता को कोई अधिकार नहीं मिलता है। जैसा कि प्रारंभिक आदेश दिनांक 27.11.1974 से पता चलता है, सेवा आयोग द्वारा चयनित उम्मीदवार की उपलब्धता आवश्यक है, न कि चयनित उम्मीदवार की ज्वाइनिंग।

जम्मू एवं कश्मीर लोक सेवा आयोग और अन्य में बनाम डॉ. नरिंदर मोहन और अन्य (1994 (2) एससीसी 630), में अन्य बातों के साथ-साथ, यह देखा गया कि इसे सामान्य नियमों के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि तदर्थ नियुक्ति की हर श्रेणी में यदि तदर्थ नियुक्त व्यक्ति जारी रहता है लंबी अवधि के लिए भर्ती के नियमों को शिथिल कर नियमितीकरण कर नियुक्ति दी जाए। उक्त मामले में पैराग्राफ 11 में स्थिति को निम्नानुसार संक्षेपित किया गया था:

"इस न्यायालय ने डॉ. एके जैन बनाम भारत संघ (1987 अनुपूरक एससीसी 497) में 1 अक्टूबर 1984 को या उससे पहले नियुक्त तदर्थ डॉक्टरों की सेवाओं को नियमित करने के लिए अनुच्छेद 142 के तहत निर्देश दिए थे। यह अनुच्छेद 142 के तहत एक निर्देश है उसमें विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर। इसलिए, उच्च न्यायालय प्रतिवादियों के मामलों पर विचार करने के लिए पीएससी को निर्देश देने के लिए उक्त निर्णय (Ratio) के रूप में निर्णय पर भरोसा करने में सही नहीं है। अनुच्छेद 142 की शक्ति केवल इस न्यायालय को सौंपी गई है। डॉ. पीपीसी रवानी बनाम भारत संघ (1992) 1 एससीसी 331 का निर्णय (Ratio) भी अनुच्छेद 141 के तहत एक बाध्यकारी नहीं है। उसमें तदर्थ नियुक्तियों को नियमित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय द्वारा जारी आदेश अंतिम हो गया था। जब कार्यान्वयन न करने पर अवमानना याचिका दायर की गई, तो संघ इस न्यायालय के आदेशों को प्रभावी करने में अपनी कठिनाई व्यक्त करते हुए एक आवेदन लेकर आया था। इस संबंध में, कार्यान्वयन में संघ द्वारा व्यक्त की गई कठिनाइयों की सराहना करते हुए, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत जारी आदेश को लागू करने के लिए आगे निर्देश दिया। इसलिए, यह अनुच्छेद 141 के तहत बाध्यकारी नहीं बल्कि निष्पादन की प्रकृति में है। भारत संघ बनाम डॉ. ज्ञान प्रकाश सिंह 1994 सप्लिमेंट में। (1) एससीसी 306 इस न्यायालय में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने एके जैन मामले (सुप्रा) में आदेश के प्रभाव पर विचार किया और माना कि 1 अक्टूबर 1984 के बाद तदर्थ आधार पर नियुक्त और कार्यभार

संभालने वाले डॉक्टरों के पास पुष्टि के लिए कोई स्वचालित अधिकार नहीं है। और उन्हें भर्ती के लिए पीएससी के समक्ष उपस्थित होकर अपना मौका लेना होगा। एचसी पुट्टास्वामी बनाम कर्नाटक के माननीय मुख्य न्यायाधीश 1991 (2) एससीसी 421, में इस न्यायालय ने यह मानते हुए कि पीएससी के परामर्श के बिना कर्नाटक राज्य में अधीनस्थ न्यायालयों में क्लर्क आदि के पदों पर नियुक्ति वैध नियुक्तियां नहीं हैं, अनुच्छेद 142 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए निर्देश दिया कि उनकी नियुक्तियां मानवीय आधार पर नियमित एक के रूप में की जाएं, क्योंकि उन्होंने 10 साल से अधिक की सेवा दे दी है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि भर्ती केवल लिपिक ग्रेड (श्रेणी-III पद) के लिए थी और यह अनुच्छेद 141 के तहत कोई (Ratio) नहीं है। हरियाणा राज्य बनाम पियारा सिंह (1992) 4 एससीसी 118 में इस न्यायालय ने कहा कि सामान्य नियम निर्धारित एजेंसी के माध्यम से भर्ती है लेकिन प्रशासनिक अत्यावश्यकताओं के कारण, एक तदर्थ या अस्थायी नियुक्ति की जा सकती है। ऐसी स्थिति में, इस न्यायालय ने माना कि ऐसे तदर्थ या अस्थायी कर्मचारियों को यथाशीघ्र नियमित रूप से चयनित कर्मचारियों से बदलने का प्रयास किया जाना चाहिए। अस्थायी कर्मचारियों को भी नियमित चयन के लिए दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की स्वतंत्रता होगी, लेकिन यदि उसका चयन नहीं होता है, तो उसे नियमित रूप से चयनित उम्मीदवारों को जगह देनी होगी। ऐसे तदर्थ या अस्थायी कर्मचारी के लिए नियमित रूप से चयनित उम्मीदवार की नियुक्ति को रोका या स्थगित नहीं रखा जा सकता है।

तदर्थ या अस्थायी कर्मचारी को किसी अन्य तदर्थ या अस्थायी कर्मचारी द्वारा प्रतिस्थापित नहीं किया जाना चाहिए। उसे केवल नियमित रूप से चयनित कर्मचारी द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। तदर्थ नियुक्ति आरक्षण के नियम को टालने का साधन नहीं होनी चाहिए। यदि कोई अस्थायी या तदर्थ कर्मचारी काफी लंबे समय तक जारी रहता है, तो अधिकारियों को नियमितीकरण के लिए उसके मामले पर विचार करना चाहिए, बशर्ते वह नियमों के अनुसार पात्र और योग्य हो और उसका सेवा रिकॉर्ड संतोषजनक हो और उसकी नियुक्ति राज्य आरक्षण नीति के विपरीत न हो। यह याद रखना चाहिए कि उस स्थिति में, नियुक्तियाँ केवल तृतीय श्रेणी या चतुर्थ श्रेणी के पदों पर होती हैं और चयन अधीनस्थ चयन समिति द्वारा किया जाता है। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि इस न्यायालय का यह सामान्य नियम बनाने का कोई इरादा नहीं है कि तदर्थ नियुक्ति की प्रत्येक श्रेणी में, यदि तदर्थ नियुक्त व्यक्ति लंबे समय तक बना रहता है, तो भर्ती के नियमों में ढील दी जानी चाहिए और नियमितीकरण द्वारा नियुक्ति की जानी चाहिए। . इस प्रकार विचार करने पर, हमें यह मानने में कोई झिझक नहीं है कि डिजीजन बेंच का निर्देश स्पष्ट रूप से अवैध है और विद्वान एकल न्यायाधीश ने राज्य सरकार को पीएससी को रिक्तियों को अधिसूचित करने का निर्देश देने में सही किया है और पीएससी को विज्ञापन देना चाहिए और उम्मीदवारों की भर्ती नियमों के अनुसार करनी चाहिए।"

भारत संघ और अन्य बनाम हरीश बालकृष्ण महाजन (1997 [3] एससीसी 194), में डॉ. नारायण के मामले (सुप्रा) के संदर्भ में स्थिति को फिर से दोहराया गया

था। इसलिए, तदर्थ/अस्थायी कर्मचारी के रूप में लंबे समय तक बने रहने के आधार पर बर्खास्तगी के आदेश को चुनौती देना निराधार है।

जिस बात पर विचार किया जाना बाकी है वह वैध अपेक्षा की दलील है। 'वैध अपेक्षा' का सिद्धांत अभी भी विकास के चरण में है जैसा कि डी स्मिथ प्रशासनिक कानून (5वें संस्करण पैरा 8.038) में बताया गया है। यह सिद्धांत कानून के शासन के मूल में है और जनता के साथ सरकारों के व्यवहार में नियमितता, पूर्वानुमेयता और निश्चितता की आवश्यकता है। इसके प्रक्रियात्मक और वास्तविक पहलुओं की वैध अपेक्षा के आधार पर, पियर्सन बनाम गृह विभाग के राज्य सचिव (1997 (3) सभी ईआर 577, पृष्ठ 606 पर) (एचएल) में लॉर्ड स्टेन डाइसी के विवरण पर वापस जाते हैं। अपने "संविधान के कानून के अध्ययन का परिचय" (10वां संस्करण 1968 पृष्ठ 203) में कानून के शासन को एक महान न्यायविद् के काम में स्थायी मूल्य के सिद्धांतों के रूप में शामिल किया गया है। डाइसी ने कहा कि संवैधानिक अधिकारों की जड़ें सामान्य कानून में हैं। उसने कहा:

"कानून का शासन', अंततः, इस तथ्य को व्यक्त करने के लिए एक सूत्र के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है कि हमारे यहां, संविधान के कानून, नियम जो विदेशों में स्वाभाविक रूप से एक संवैधानिक संहिता का हिस्सा बनते हैं, स्रोत नहीं बल्कि परिणाम हैं व्यक्तियों के अधिकार, जैसा कि अदालतों द्वारा परिभाषित और लागू किया जाता है; संक्षेप में, निजी कानून के सिद्धांत हमारे यहां अदालतों और संसद की कार्रवाई से इतने विस्तारित हुए हैं कि क्राउन और उसके सेवकों की स्थिति निर्धारित की जा सके; इस प्रकार संविधान देश के सामान्य कानून का परिणाम है"।

लॉर्ड स्टेन कहते हैं, यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और संघ की स्वतंत्रता और सार्वजनिक बैठक की स्वतंत्रता के अधिकारों की डाइसी की चर्चा की धुरी है और यह स्पष्ट है कि डाइसी कानून के शासन को प्रक्रियात्मक और वास्तविक दोनों प्रभावों वाला मानता है। "कानून का शासन निष्पक्षता के न्यूनतम मानकों को लागू करता है, वास्तविक और प्रक्रियात्मक दोनों।" पियर्सन के तथ्यों पर, बहुमत ने माना कि राज्य सचिव न्यायपालिका द्वारा अनुशंसित सजा की उच्च दर को बनाए नहीं रख सकते थे, जबकि स्वीकार्य रूप से कोई गंभीर परिस्थिति मौजूद नहीं थी। राज्य पूर्वव्यापी प्रभाव से टैरिफ में वृद्धि भी नहीं कर सका।

इस शाखा में 'वैध अपेक्षा' से संबंधित बुनियादी सिद्धांतों को काउंसिल ऑफ सिविल सर्विस यूनियन्स और अन्य में लॉर्ड डिप्लॉक द्वारा प्रतिपादित किया गया था। सिविल सेवा मंत्री (1985 एसी 374 (408-409) (आमतौर पर सीसीएसयू मामले के रूप में जाना जाता है)। उस मामले में यह देखा गया कि वैध अपेक्षा उत्पन्न होने के लिए, प्रशासनिक प्राधिकरण के निर्णयों को व्यक्ति को वंचित करके प्रभावित करना चाहिए उसे कुछ लाभ या फायदा हुआ है जिसका आनंद लेने के लिए या तो उसे (i) अतीत में निर्णय-निर्माता द्वारा अनुमति दी गई थी और जिसे वह वैध रूप से जारी रखने की अनुमति की उम्मीद कर सकता है जब तक कि उसे वापस लेने के लिए कुछ तर्कसंगत आधार नहीं बताए गए हों जिस पर उसे टिप्पणी करने का अवसर दिया गया है, या (ii) उसे निर्णय-निर्माता से आश्वासन मिला है कि उन्हें वापस नहीं लिया जाना चाहिए, इस पर तर्क देने के लिए अग्रिम कारण देने का अवसर दिए बिना उन्हें वापस नहीं लिया जाएगा। इसका प्रक्रियात्मक हिस्सा एक अभ्यावेदन से संबंधित है कि निर्णय लेने से पहले एक सुनवाई या अन्य उचित प्रक्रिया की जाएगी। सिद्धांत का मूल हिस्सा यह है कि यदि एक अभ्यावेदन किया जाता है तो एक वास्तविक प्रकृति का लाभ दिया जाएगा या यदि व्यक्ति को पहले से ही यह लाभ प्राप्त हो रहा है कि इसे जारी रखा

जाएगा और इसमें बहुत ज्यादा बदलाव नहीं किया जाएगा, तो इसे लागू किया जा सकता है। उपरोक्त मामले में, लॉर्ड फ्रेज़र ने स्वीकार किया कि सिविल सेवकों को यह वैध अपेक्षा थी कि उनकी ट्रेड यूनियन सदस्यता वापस लेने से पहले उनसे परामर्श किया जाएगा क्योंकि अतीत में जब भी सेवा की शर्तों में महत्वपूर्ण बदलाव किया जाता था तो पूर्व परामर्श मानक अभ्यास था। लॉर्ड डिप्लॉक थोड़ा आगे बढ़ गए, जब उन्होंने कहा कि उन्हें वैध उम्मीद है कि वे ट्रेड यूनियन सदस्यता के लाभों का आनंद लेना जारी रखेंगे, जिसके संबंध में हित सुरक्षा योग्य है। कोई अपेक्षा स्पष्ट वादे या अभ्यावेदन या स्थापित पूर्व कार्रवाई या स्थापित आचरण पर आधारित हो सकती है। प्रतिनिधित्व स्पष्ट होना चाहिए। यह व्यक्ति या आम तौर पर व्यक्तियों के वर्ग का प्रतिनिधित्व हो सकता है।

वास्तविक वैध अपेक्षा का सिद्धांत, अर्थात् किसी न किसी प्रकार के अनुकूल निर्णय की अपेक्षा, को कई मामलों में अंग्रेजी कानून के हिस्से के रूप में स्वीकार किया गया है। (डी स्मिथ, प्रशासनिक कानून, 5वां संस्करण) (पैरा 13.030), (वेड, प्रशासनिक कानून, 7वां संस्करण भी देखें) (पीपी. 418-419)। वेड के अनुसार, एनएसडब्ल्यू बनाम क्विन (1990) 93 ऑल ईआर 1 (लेकिन बाद में संदर्भित टेओन के मामले का अवलोकन करे) के लिए ऑस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय द्वारा अटॉर्नी जनरल में वास्तविक वैध अपेक्षा के सिद्धांत को "अस्वीकार" कर दिया गया है। (कनाडा) कनाडा सहायता योजना (1991) 83 डीएलआर (चौथा 297) में भी खारिज कर दिया गया, लेकिन आयरलैंड में इसका समर्थन किया गया: कैनन बनाम समुद्री मंत्री 1991(1) आईआर 82। यूरोपीय न्यायालय आगे बढ़ता है और न्यायालय को आनुपातिकता लागू करने की अनुमति देता है और वैध अपेक्षा और सार्वजनिक हित के बीच संतुलन स्थापित करने का मत रखता है।

फिर भी, अंग्रेजी कानून के तहत यह माना गया है कि सार्वजनिक हित में नीति को बदलने की निर्णय की देने वाले स्वतंत्रता को "वास्तविक वैध" अपेक्षा के सिद्धांत के कारण रोका नहीं जा सकता है। पहले के मामलों की टिप्पणियाँ वर्तमान में प्रचलित नियमों की तुलना में अधिक अनम्य नियम पेश करती हैं। आर. बनाम आईआरसी, पूर्व पी प्रेस्टन (1985 एसी 835) में हाउस ऑफ लॉर्ड्स ने इस दलील को खारिज कर दिया कि कुछ श्रेणियों के कैदियों के लिए पैरोल से संबंधित बदली हुई नीति के लिए कैदी के साथ पूर्व परामर्श की आवश्यकता है, लॉर्ड स्कर्मन ने कहा:

"लेकिन उनकी वैध अपेक्षा क्या थी। पैरोल को नियंत्रित करने वाले विधायी प्रावधानों के सार और उद्देश्य को देखते हुए, एक सजायाफ्ता कैदी वैध रूप से अधिकतम यही उम्मीद कर सकता है कि राज्य सचिव जो भी नीति अपनाना उचित समझें, उसके आलोक में उसके मामले की व्यक्तिगत रूप से जांच की जाए। बशर्ते कि अपनाई गई नीति कानून द्वारा उसे प्रदत्त विवेक का एक वैध अभ्यास है। किसी भी अन्य दृष्टिकोण से यह निष्कर्ष निकलेगा कि मंत्री को कानून द्वारा प्रदत्त निरंकुश विवेक कुछ मामलों में प्रतिबंधित किया जा सकता है जिससे बाधा उत्पन्न हो सकती है या यहाँ तक कि नीति में बदलाव को रोकें।"

ह्यूजेस बनाम स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा विभाग (एचएल) 1985 एसी 776 (788) मामले में लॉर्ड डिप्लॉक की टिप्पणियाँ समान प्रभाव वाली हैं:

"परिस्थितियों में बदलाव के साथ प्रशासनिक नीतियां बदल सकती हैं, जिसमें सरकारों के राजनीतिक स्वरूप में बदलाव भी शामिल है। ऐसे

बदलाव करने की स्वतंत्रता हमारी सरकार के संवैधानिक स्वरूप में अंतर्निहित है।"

(इस संबंध में श्री डेटन का लेख "क्यों प्रशासकों को उनकी नीतियों से बाध्य होना चाहिए" (खंड 17) 1997 ऑक्सफोर्ड जर्नल ऑफ लीगल स्टडीज, पृष्ठ 23 देखें)। लेकिन आज जब भी नीति में कोई बदलाव होता है, तो उपरोक्त निर्णयों की कठोरता को वेडनसबरी नियम के लागू होने की सीमा तक कुछ हद तक शिथिल किया गया प्रतीत होता है और हम वेडनसबरी अभी वर्तमान में उन पहलुओं का उल्लेख करेंगे।

ऐसा करने से पहले, हम यह पता लगाने के लिए इस न्यायालय के कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों का उल्लेख करेंगे कि हमारे देश में वास्तविक वैध अपेक्षा के सिद्धांत को किस हद तक स्वीकार किया जाता है। नवज्योति सहकारिता में. ग्रुप हाउसिंग सोसाइटी बनाम भारत संघ (1992 (4) एससीसी 477), इस निर्णय में प्रक्रियात्मक निष्पक्षता का सिद्धांत लागू किया गया था। उस मामले में भूमि आवंटन के लिए सहकारी आवास समितियों की अस्तित्व सूची के अनुसार वरिष्ठता को बाद के निर्णय द्वारा बदल दिया गया था। पिछली नीति यह थी कि भूमि आवंटन के संबंध में हाउसिंग सोसायटियों के बीच वरिष्ठता रजिस्ट्रार के पास सोसायटी के पंजीकरण की तारीख के आधार पर होगी। लेकिन 20.1.1990 को, रजिस्ट्रार द्वारा अंतिम सूची की मंजूरी की तारीख के आधार पर वरिष्ठता की गणना करके नीति को बदल दिया गया था। इससे भूमि आवंटन के लिए समितियों की मौजूदा वरिष्ठता बदल गई। इस न्यायालय ने माना कि समितियाँ 'वैध अपेक्षा' की हकदार थीं कि आवंटन के मामले में पिछली सुसंगत प्रथा का पालन किया जाएगा, भले ही ऐसे आवंटन के लिए निजी कानून में कोई अधिकार न हो। मानदंड में परिवर्तन को उचित ठहराने के लिए सार्वजनिक नीति के किसी प्रमुख कारण के बिना प्राधिकरण पिछली वरिष्ठता सूची के अनुसार समाजों की वैध अपेक्षा को पराजित करने का हकदार नहीं था। ऐसा कोई भी

व्यापक सार्वजनिक हित नहीं दिखाया गया। 'वैध अपेक्षा' के सिद्धांत के अनुसार, यदि प्राधिकारी ने किसी व्यक्ति की वैध अपेक्षा को विफल करने का प्रस्ताव रखा है, तो उसे मामले में प्रतिनिधित्व करने का अवसर देना चाहिए। हेल्सबरी के इंग्लैंड के कानूनों (पृष्ठ 151, खंड 1 (1) (चौथा संस्करण) और सीसीएसयू मामले का संदर्भ दिया गया था। यह माना गया कि सिद्धांत, संक्षेप में, सार्वजनिक प्राधिकरण पर एक कर्तव्य लगाता है। ऐसी वैध अपेक्षा से संबंधित सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए निष्पक्षता से कार्य करें। (निष्पक्ष व्यवहार के दायरे में, नीति में बदलाव के खिलाफ प्रतिनिधित्व करने का इस निर्णय द्वारा उचित अवसर आया।

अगला मामला जिसमें 'वैध अपेक्षा' के सिद्धांत पर विचार किया गया वह है भारतीय खाद्य निगम बनाम मेसर्स कामधेनु कैटल फीड इंडस्ट्रीज , (1993 (1) एससीसी 71) । वहां भारतीय खाद्य निगम ने क्षतिग्रस्त खाद्यान्नों के स्टॉक की बिक्री के लिए निविदाएं आमंत्रित कीं और प्रतिवादी की बोली सबसे ऊंची थी। सभी निविदाकारों को बातचीत के लिए आमंत्रित किया गया था, लेकिन प्रतिवादी ने बातचीत के दौरान अपनी बोली नहीं बढ़ाई, जबकि अन्य ने बोली बढ़ा दी। प्रतिवादी ने एक रिट याचिका दायर कर दावा किया कि उसे अपनी बोली की स्वीकृति की वैध उम्मीद थी। उच्च न्यायालय ने रिट याचिका स्वीकार कर ली। फैसले को पलटते हुए, इस न्यायालय ने सीसीएसयू मामले और आर. वी. आईआरसी पूर्व पी प्रेस्टन (1985 एसी 835) का हवाला दिया। यह माना गया कि यद्यपि प्रतिवादी की बोली सबसे ऊंची थी, फिर भी उसे इसे स्वीकार करने का कोई अधिकार नहीं था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसकी निविदा को मनमाने ढंग से खारिज नहीं किया जा सकता है, लेकिन यदि निगम को उचित रूप से लगता है कि प्रतिवादी द्वारा दी गई राशि वाणिज्यिक क्षेत्र में सक्रिय कारकों के अनुसार अपर्याप्त थी, तो बोली की अस्वीकृति को गलत नहीं ठहराया जा

सकता है। बातचीत की प्रक्रिया में ही उच्चतम बोली लगाने वाले की वैध अपेक्षा को उचित महत्व देना शामिल था और यह पर्याप्त था।

इस न्यायालय ने भारत संघ और अन्य बनाम हिंदुस्तान डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन और अन्य । (1993 (3) एससीसी 499) में इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया । वहां रेलवे को कास्ट-स्टील बोगियों की आपूर्ति के लिए निविदाएं बुलाई गईं। तीन बड़े निर्माताओं ने छोटे निर्माताओं की तुलना में कम कीमत उद्धृत की। तब रेलवे ने दोहरी मूल्य निर्धारण नीति अपनाई, जिसमें कथित तौर पर कार्टल बनाने वाले बड़े निर्माताओं को कम दर पर काउंटर ऑफर दिया गया और दूसरों को अधिक ऑफर दिया गया ताकि एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को सक्षम किया जा सके। इसे तीन बड़े निर्माताओं ने यह शिकायत करते हुए चुनौती दी कि वे भी उच्च दर और बड़ी संख्या में बोगियों के हकदार हैं। इस न्यायालय ने माना कि दोहरी मूल्य निर्धारण नीति में परिवर्तन खराब नहीं था और यह 'तर्कसंगत और उचित' आधार पर आधारित था। उस संदर्भ में, हेल्सबरी के इंग्लैंड के कानून (चौथा संस्करण) (खंड 1 (आई) पृष्ठ 151), शिम्ट बनाम गृह राज्य सचिव (1969 (2) अध्याय 149) का हवाला दिया गया था जिसके लिए एक अवसर की आवश्यकता थी यदि किसी विदेशी को ब्रिटेन में रहने के लिए दी गई छूट का समय समाप्त होने से पहले रद्द की जा रही हो और हांगकांग, अटॉर्नी-जनरल बनाम एनजी यूएन शिउ (1983 (2) एसी 629) जिसमें हांगकांग सरकार को प्रत्येक निर्वासन मामले को उसकी योग्यता के आधार पर मानने के अपने उपक्रम का सम्मान करने की आवश्यकता व्यक्त की थी, और सीसीएसयू का मामला (सुप्रा) जो व्यापार की सदस्यता से संबंधित शर्तों में बदलाव से संबंधित था। यूनियनों और नीति में बदलाव के मामले में यूनियनों से परामर्श करने की आवश्यकता बताई, जैसा कि अतीत में प्रथा थी, और भारतीय खाद्य निगम (सुप्रा) और नवज्योति को-ऑप के मामले में। गुप हाउसिंग सोसायटी का मामला (सुप्रा) तब यह देखा गया कि वैध अपेक्षा प्रत्याशा के

समान नहीं थी। यह मात्र इच्छा या आशा की इच्छा से भी भिन्न था; न ही यह किसी अधिकार पर आधारित दावा या मांग थी। मात्र निराशा कानूनी परिणाम को जन्म नहीं देगी। स्थिति इस प्रकार दर्शाई गई:

"किसी अपेक्षा की वैधता का अनुमान केवल तभी लगाया जा सकता है जब वह कानून या रीति-रिवाज या नियमित और प्राकृतिक अनुक्रम में अपनाई गई स्थापित प्रक्रिया की मंजूरी पर आधारित हो। ऐसी अपेक्षा उचित रूप से वैध और संरक्षित होनी चाहिए।"

वेड/प्रशासनिक कानून (6 वां संस्करण) (पृ.424,522) तथा अटॉर्नी जनरल, न्यू साउथ वेल्स बनाम क्वीन (1990) 64 ऑस्ट्रेलिया एल.जे.आर. पृ.327 में ऑस्ट्रेलियाई उच्च न्यायालय के फैसले का भी हवाला दिया गया था। जिसमें वेड के अनुसार सिद्धांत को स्वीकृति नहीं मिली। उस मामले में पुरानी अदालत प्रणाली के तहत पेटी सेशन कोर्ट के प्रभारी वजीफा मजिस्ट्रेट को स्थानीय अदालतों की प्रणाली में नियुक्ति से इनकार कर दिया गया था, जिसने पेटी सेशन कोर्ट की पिछली प्रणाली को बदल दिया था। 1987 में, अटॉर्नी जनरल, जो अब तक नई स्थानीय अदालतों में नियुक्ति के लिए 'फिटनेस' के आधार पर पूर्व मजिस्ट्रेटों की सिफारिश कर रहे थे, उस नीति से हट गए और प्रतिस्पर्धी आवेदकों की योग्यता के आकलन के आधार पर जाने का फैसला किया। अपील न्यायालय ने निर्देश दिया था कि श्री क्वीन के मामले पर अलग से विचार किया जाना चाहिए और अन्य आवेदकों के साथ प्रतिस्पर्धा में नहीं, लेकिन ऑस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय (मेसन, सी.जे., ब्रेनन और डॉसन, जे.जे.) के बहुमत से इसे उलट दिया गया। (डीन और टूबी, जे जे असहमत)। मेसन, सी.जे. ने माना कि न्यायालय एक अलग नीति अपनाने के लिए कार्यकारी विवेक को बाध्य नहीं कर सकता है जो न्याय प्रशासन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए गणना की गई हो। ऐसे मामले में वास्तविक राहत देने से कार्यपालिका को उस नई नीति को प्रभावी करने से प्रभावी

ढंग से रोका जा सकेगा जिसे वह मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति के संबंध में अपनाना चाहती थी। ब्रेनन, जे. ने बहुत स्पष्ट रूप से देखा कि वैध अपेक्षा (कानूनी अधिकार से कम होना) की धारणा शक्ति के प्रयोग को अमान्य करने के लिए आधार बनाने के लिए बहुत अस्पष्ट थी। उन्होंने कहा कि ऐसा सिद्धांत "अदालतों को व्यावहारिकता के एक समुद्र में भटका देगा।" डॉसन, जे. ने माना कि प्रतिवादी का विवाद प्रक्रियात्मक निष्पक्षता की सीमा से अधिक है और कार्यपालिका की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करता है। हिंदुस्तान डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन का प्रकरण और एकपक्षीय रुडॉक (1987 2 ऑल ईआर 518) और फाइंडले बनाम गृह विभाग के राज्य सचिव (1984) 3 ऑल ईआर 801) और ब्रीन बनाम अमलगमेटेड इंजीनियरिंग यूनियन, (1971) 1 ऑल ईआर 1148 पर विचार किया गया। यह स्वीकार किया गया कि वैध अपेक्षा के सिद्धांत ने आवेदक को न्यायिक समीक्षा की मांग करने के लिए पर्याप्त अधिकार दिया और यह सिद्धांत ज्यादातर निर्णय से पहले निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार तक ही सीमित था, जिसके परिणामस्वरूप एक वादा अस्वीकार कर दिया गया या एक उपक्रम वापस ले लिया गया। इसमें कोई ठोस अधिकार शामिल नहीं था। ऐसी वैध अपेक्षा की सुरक्षा के लिए उस अपेक्षा की पूर्ति की आवश्यकता नहीं होती है, जहां सर्वोपरि सार्वजनिक हित की आवश्यकता होती है। हालाँकि, इस तरह के सर्वोपरि सार्वजनिक हित को दिखाने का बोझ निर्णय निर्माता पर था। वास्तविक वैध अपेक्षा का मामला तब उत्पन्न होगा जब कोई निकाय प्रतिनिधित्व या पिछले अभ्यास द्वारा अपेक्षा जगाता है जिसे पूरा करना उसकी शक्तियों के भीतर होगा। न्यायालय तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब प्राधिकारी द्वारा लिया गया निर्णय मनमाना, अनुचित या जनहित में न लिया गया हो। यदि यह स्थापित हो जाता है कि उपरोक्त सिद्धांतों के आवेदन पर एक वैध अपेक्षा को अनुचित तरीके से अस्वीकार कर दिया गया है, तो न्याय की विफलता दिखाए जाने पर अवसर देने का प्रश्न उठ सकता है। न्यायालय को एक वस्तुनिष्ठ पद्धति का पालन करना चाहिए जिसके द्वारा निर्णय लेने वाले प्राधिकारी को पसंद की पूरी श्रृंखला दी जाती है

जिसके बारे में विधायिका का इरादा माना जाता है। यदि निर्णय निष्पक्षता और निष्पक्षता से लिया जाता है, तो प्रक्रियात्मक निष्पक्षता के आधार पर इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। एक उदाहरण दिया गया कि यदि किसी मौजूदा लाइसेंस धारक को नवीनीकरण दिया गया था, तो एक नया आवेदक प्राकृतिक न्याय के आधार पर अवसर का दावा नहीं कर सकता है। तथ्यों के आधार पर, यह माना गया कि उचित विचारों के आधार पर वैध अपेक्षा को अस्वीकार कर दिया गया था।

अगला मामला जिसमें प्रश्न पर विचार किया गया वह मद्रास सिटी वाइन मर्चेण्ट्स एसोसिएशन बनाम तमिलनाडु राज्य, 1994 (5) एससीसी 509 है। इस मामले में मौजूदा नियमों को निरस्त करके शराब लाइसेंस के नवीनीकरण से संबंधित नियमों को वैधानिक रूप से बदल दिया गया था। यह माना गया कि निरसन कानून द्वारा नीति में बदलाव का परिणाम है, गैर-मनमानेपन का सिद्धांत लागू नहीं किया जा सकता है।

मध्य प्रदेश तेल निष्कर्षण बनाम मध्य प्रदेश राज्य मामले (1997 (7) एससीसी 592) प्रश्न पर पुनः विचार किया गया। उस मामले में, यह माना गया कि राज्य के निमंत्रण पर मध्य प्रदेश में स्थित चयनित उद्योगों को अन्य स्थानीय उद्योगों की तुलना में अनुबंध के नवीनीकरण का विस्तार करने की राज्य की नीति मनमानी नहीं थी और उक्त चयनित उद्योगों की एक वैध अपेक्षा थी नवीनीकरण के दावों के तहत नवीनीकरण को पिछले अभ्यास के अनुसार प्रभावी किया जाना चाहिए जब तक कि अभ्यास का पालन न करने का कोई विशेष कारण न हो। यह स्पष्ट रूप से माना गया था कि वास्तविक वैध अपेक्षा के सिद्धांत को पहले न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था। खाद्य निगम (सुप्रा), नवज्योति को-ऑप के मामले का हवाला दिया गया था। गुप हाउसिंग सोसाइटी का मामला (सुप्रा) और हिंदुस्तान डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन का मामला (सुप्रा)।

अंत में हम नेशनल बिल्डिंग कंस्ट्रक्शन कॉरपोरेशन बनाम एस.रघुनाथन और अन्य 1998 (7) एससीसी 66_ मामले में तीन न्यायाधीशों के फैसले पर आते हैं । यह मामला इस मामले से अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि यह भी एक सेवा मामला था। उत्तरदाताओं को सीपीडब्ल्यूडी में नियुक्त किया गया था और वे इराक में एनबीसीसी में प्रतिनियुक्ति पर चले गए और उन्होंने प्रतिनियुक्ति पर रहते हुए सीपीडब्ल्यूडी में अपना ग्रेड वेतन और प्रतिनियुक्ति भत्ता प्राप्त करने का विकल्प चुना। इसके अलावा, एनबीसीसी ने उन्हें मूल वेतन का 125% विदेशी भत्ता दिया। इस बीच चौथे वेतन आयोग की सिफारिश पर सीपीडब्ल्यूडी में उनका मूल वेतन 1.1.1986 से संशोधित किया था। उनका तर्क था कि एनबीसीसी द्वारा उनके संशोधित वेतनमान पर 125% की उपरोक्त वृद्धि दी जानी चाहिए। इसे एनबीसीसी ने दिनांक 15.10.1990 के आदेश द्वारा स्वीकार नहीं किया। जिन विशिष्ट परिस्थितियों में एनबीसीसी इराक में काम कर रही थी, उन्हें देखते हुए वैध अपेक्षा पर आधारित उत्तरदाताओं के तर्क को खारिज कर दिया गया। यह देखा गया कि 'वैध अपेक्षा' के सिद्धांत में वास्तविक और प्रक्रियात्मक दोनों पहलू थे। इस न्यायालय ने एक स्पष्ट सिद्धांत दिया कि वैध अपेक्षा पर दावों के लिए प्रतिनिधित्व और परिणामी नुकसान पर उसी तरह निर्भरता की आवश्यकता होती है जैसे कि वचनबंधन पर आधारित दावों पर। यह सिद्धांत 'तर्कसंगतता' के संदर्भ में और 'प्राकृतिक न्याय' के संदर्भ में विकसित किया गया था। आईआरसी ऍक्सप का हवाला दिया गया था। प्रेस्टन का मामला (सुप्रा); खाद्य निगम का मामला (सुप्रा); हिंदुस्तान डेवलपमेंट कॉरपोरेशन का मामला (सुप्रा); द ऑस्ट्रेलियन केस इन क्विन (1990) 64 अगस्त, आईजेआर 327; एमपी ऑयल एक्सट्रैक्शन का मामला (सुप्रा), सीसीएसयू का मामला (सुप्रा) और नवज्योति का मामला (सुप्रा)।

ऊपर वर्णित मामले के तथ्यों पर, वैध अपेक्षा का सिद्धांत लागू नहीं होता है। यह नहीं दिखाया गया है कि अधिकारियों द्वारा ऐसा कोई कार्य कैसे किया गया जिससे

यह धारणा बनी कि मूल नियुक्ति आदेश में संलग्न शर्तों को माफ कर दिया गया था। केवल जारी रखने का मतलब ऐसी छूट नहीं है। ऐसी निराधार धारणाओं पर कोई भी वैध अपेक्षा स्थापित नहीं की जा सकती। यह भी नहीं बताया गया कि किसने, यदि कोई है और किस अधिकार से ऐसी धारणा बनाई। अपेक्षित अनुपालन के विरुद्ध होने वाली किसी भी छूट को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। कोई अपेक्षा मौजूद है या नहीं, यह स्वतः ही तथ्य का प्रश्न है। हालाँकि, स्पष्ट वैधानिक शब्द किसी भी अपेक्षा पर हावी हो जाते हैं। (रेजिना बनाम लोक अभियोजन निदेशक, एकपक्षीय केबिलीन और अन्य। (1999) 3 डब्लूएलआर 972 (एचएल)।

अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि डिवीजन बेंच का फैसला टेरा फ़रमा (Terra Firma) पर है और इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, मामले का पूर्ण निस्तारण होने से पहले एक बात पर ध्यान देना ज़रूरी है। अपीलकर्ता ने पहले ही 28 साल की सेवा पूरी कर ली है, भविष्य निधि, पेंशन और ग्रेच्युटी योजनाओं में भाग लिया है, और इसके अलावा उसने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए आवेदन किया है। हम आशा करते हैं कि सरकार अपील खारिज होने से प्रभावित हुए बिना, योजनाओं का लाभ देने और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के लिए की गई प्रार्थना को उचित परिप्रेक्ष्य में शीघ्र स्वीकार करने के लिए उनके द्वारा की गई प्रार्थनाओं पर उचित रूप से विचार करेगी।

अपील खारिज. उचित कॉस्ट लगाई गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक श्रीमती रश्मि आर्य, अतिरिक्त सेशन न्यायाधीश (महिला उत्पीड़न प्रकरण), बीकानेर, राजस्थान द्वारा किया गया।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।